ABSTRACT

ब्रिटिश काल का वह समय जब तत्कालीन हिन्दुस्तान में दूर-दूर तक मात्र अंग्रेजी, फ़ारसी, उर्दू एवं बांग्ला भाषा में केवल अखबार छपते थे, हिंदी भाषा का पहली बार किसी ने पत्रकारिता से परिचय कराया तो वह थे देश की राजधानी कलकत्ता में कानपुर के रहने वाले वकील पण्डित जुगल किशोर शुक्ल जी। जिन्होंनें साहस भरे क्रांतिकारी कदम उठाते हुए अंग्रेजों की नाक के नीचे हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास की नींव रखी।

इस अखबार की वजह से हिंदी भाषा की पहचान पत्रकारिता के भाषा के रूप में बनीं, साथ ही यह अखबार तत्कालीन औपनिवेशिक सत्ता के खिलाफ प्रखर आवाज बनकर सामने आया। 30 मई 1826 के दिन हिंदी भाषा का पहला अखबार 'उदन्त मार्तंड' अस्तित्व में आया। इसी वजह से इस दिन को हिंदी पत्रकारिता दिवस के रूप में भी मनाया जाता है।

'हंस' पत्रिका निकालने के पूर्व जयशंकर प्रसाद को लिखे एक पत्र में प्रेमचंद जी लिखते हैं कि- काशी से कोई साहित्यिक पत्रिका न निकलती थी। मैं धनी नहीं मजदूर आदमी हूं, मैंने 'हंस' निकालने का निश्चय कर लिया है। इस निश्चय के साथ मार्च 1930 में बसन्त पंचमी के दिन 'हंस' के प्रकाशन की शुरुआत हुई।

'हंस' के प्रथम अंक के संपादकीय में लिखते हुए प्रेमचंद ने लिखा- 'हंस' भी अपनी नन्हीं चोंच में चुटकी भर मिट्टी लिये हुए समुद्र पाटने, आजादी की जंग में योगदान देने चला है।... साहित्य और समाज में वह उन गुणों का परिचय करा ही देगा, जो परंपरा ने उसे प्रदान किया है।

कथा सम्राट प्रेमचंद का यह पौधा भले ही पचास के दशक में सूख गया था, उसे फिर से अपनी उम्मीदों के जरिए खाद-पानी देकर ना सिर्फ जिंदा करना, बल्कि उसमें कोंपले निकालना राजेंद्र यादव के जीवट की ही बात थी। 1986 में पुनर्जीवित हुआ हंस अब 'अड़तीस' साल का हो गया है और हिंदी क्षेत्र की सांस्कृतिक धड़कनों के प्रतीक के तौर पर राज कर रहा है। 'नई कहानी' आंदोलन के जरिए हिंदी कहानी के केंद्र में स्थापित हो चुके राजेंद्र यादव को 'हंस' के बाद पैदा हुई साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्कारों वाली पीढ़ियां उनके विमर्शों के लिए कहीं ज्यादा जानेगी, अपेक्षाकृत उनके कथा लेखन से ।

राजेंद्र यादव के 'हंस' की विशेषता थी कि उसमें जो छपता था, वह विमर्श की दृष्टि से नया, बेबाक और बिलकुल अलग होता था। उसकी गमक दिलो-दिमाग पर देर तक सवार रहती थी। चाहे वह विषय के चयन को लेकर हो या भाषा को, राजेंद्र जी सभी में मौलिक नजर आते थे। उन्होंने 'हंस' में महिला, दलित और मुस्लिम साहित्यकारों को खुलकर स्थान दिया। इसके लिए उन्हें लंबा विरोध भी झेलना पड़ा। 'हंस' को बदनाम करने के लिए लोगों ने उन पर अश्लीलता के आरोप भी लगाए। उसे सांस्कृतिक अपसंस्करण का वाहक कहा गया। तमाम किस्म के दबावों के बीच राजेंद्र जी अपने मूल्यों पर अडिग बने रहे। स्त्री, दलित और अल्पसंख्यक अस्मिता के संघर्ष में उन्होंने सदैव स्त्री, दलित और मुसलमान साहित्यकारों, विचारकों का साथ दिया। ओमप्रकाश बाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' को शीर्षक देने का श्रेय भी उन्हीं को जाता है।

राजेंद्र यादव और 'हंस' के सरोकारों को केवल स्त्री, दलित और अल्पसंख्यक तक सीमित कर देना, उनके योगदान को कम करके आंकना होगा। हालांकि 'हंस' तो इतने भर से भी साहित्यिक पत्रिकाओं में शीर्ष पर बना रह सकता था। 'हंस' की प्रतिबद्धता पूरे जनसमाज के प्रति थी। 'हंस' ने जिस तरह धर्म के आडंबरवाद पर चोट की, उतनी मुखरता से शायद ही किसी और पत्रिका ने आवाज उठाई हो। राजेंद्र यादव हिंदी में स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श, अल्पसंख्यक-विमर्श और आदिवासी-विमर्श के सूत्रधारों में से थे।

उन्होंने प्रभा खेतान को 'सीमोन द बोउआर' की कृति 'दि सेकेंड सेक्स' का हिंदी अनुवाद करने के लिए प्रेरित किया, जो हिंदी में 'स्त्री-उपेक्षिता' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। हिंदी में स्त्री-विमर्श को आगे बढ़ाने में जितना योगदान इस अकेली पुस्तक का है, उतना शायद ही किसी और पुस्तक का होगा। निश्चय ही इसका श्रेय राजेंद्र यादव को जाता है। भारत में लड़की को होश संभालते ही समझाया जाता है, तुम्हारा शरीर तुम्हारा नहीं है। उस पर तुम्हारे पति का अधिकार होगा। और जब तक विवाह नहीं हो जाता तब तक तुम पिता के संरक्षण में हो। राजेंद्र का स्त्री-विमर्श इसी विसंगति पर केंद्रित था। वे मानते थे कि व्यक्ति होने के नाते अपने शरीर पर सबसे पहला अधिकार स्त्री का होता है। पुरुष समाज को स्त्री के इस अधिकार का सम्मान करना चाहिए।

हर महीने संपादकीय के तौर पर छपने वाला उनका स्तंभ 'मेरी-तेरी उसकी बात' की हिंदी क्षेत्र में अगर प्रतीक्षा की जाती है तो इसीलिए कि उसमें हर बार कुछ नया, कुछ

ज्यादा बौद्धिक उत्तेजक और खास होता है। कथाकार राजेंद्र यादव की कलम के इस नवोन्मेष ने उन्हें साहित्यिक और सांस्कृतिक ही नहीं, बल्कि राजनीतिक विमर्श के केंद्र में ला खड़ा किया है। इस एक स्तंभ ने उन्हें बौद्धिक लोकप्रियता तो दिलाई ही, इसकी कीमत भी उन्हें चुकानी पड़ी। कई बार उनके विवादित विचारों ने राजनीतिक बवंडर भी खड़ा किया। लेकिन राजेंद्र यादव अपनी बात पर टिके रहे।

समाज के वंचित तबके और स्त्री-पुरुष संबंधों को अपने लेखन का विषय बनाने वाले राजेंद्र यादव जी 'हंस' में उन्होंने साहित्य के इर्द-गिर्द सामाजिक विषयों पर बहस शुरू की। दलितों के सवाल पर, स्त्रियों के सवाल पर, अल्पसंख्यकों के सवाल पर और यौन वृत्तियों के सवाल पर, यह भी उनका बड़ा योगदान है।

राजेंद्र यादव राजनेता न थे। उन्हें हम लेखक-विचारक कह सकते हैं, किंतु उनका पहला प्यार रचनात्मक साहित्य से था। प्रेमचंद ने लिखा था- 'साहित्य राजनीति के आगे जलने वाली मशाल है।' यही सूत्र राजेंद्र जी का मार्गदर्शक, पथप्रदर्शक सिद्ध हुआ। उम्मीदों को बचाए रखने, नए सपनों को गढ़ने की चाहत, अपने बूते आगे बढ़ने का आत्मविश्वास, घोर नैराश्य के विरुद्ध आशावाद। यह अनायास न होकर भविष्य की कार्ययोजना का प्रेरणा बिंदु था। अपने लेखों, संपादकियों के माध्यम से राजेंद्र यादव दलित वर्गों को भविष्य के सपनों से भरपूर इसी प्रयाण-यात्रा के लिए अनुप्रेत करते रहे।

साहित्यिक हिंदी पत्रकारिता का इतिहास न केवल समृद्ध है बल्कि समय के सापेक्ष उपजने वाले विमर्शों में यह अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। टेक्नोलोजी के अत्यधिक विकास और प्रयोग के बावजूद मुद्रित माध्यमों की महत्ता तनिक भी कम नहीं हुई है बल्कि यह मुद्रित होने के साथ-साथ इंटरनेट से जुड़े माध्यमों में प्रवेश कर चुकी है और साहित्यिक हिंदी पत्रकारिता को ग्लोबल प्रसिद्धि और प्रसार मिल रहा है। प्रत्येक सामाजिक विमर्श में साहित्यिक हिंदी पत्रिकाओं की भूमिका और महत्त्व सदैव विद्यमान रहेगा।